



साहित्य / व्यंग्य

टन्-टन्-टन्! शहर के घंटाघर की बारह चोटों ने उसकी चितन की कड़ियों को जैसे बिखरा दिया। लंबी श्वांस भरकर उसने एक क्षीण दृष्टि सामने जल रही अंगीठी पर डाली। अंगारों की लालिमा को राख अपने आवरण में ढकने लगी थी। अंगारों की गर्मी कुछ कम महसूस कर वह उठी और कुछ कोयले लाकर अंगीठी में डाल दिए। नयी हवा में सांस लेकर कोयले पुनः अंगारे बनकर धकने लगे और वह अपने चितन की कड़ियों को बटोरने की कोशिश करते हुए बुदबुदाई-अभी तक नहीं आए, बारह से ज्यादा ही बज गए।

नयी नियति

क छोटा कमरा और रसोईघर, यही इन्करा घर था। इसी में यह दोनों पति-पत्नी रहते थे। पति तो सुनहरे से निक्लर जाते, पति में कब लीटने कुछ ठिकाना नहीं, लीटें भी या न लीटें कौन कहे? और पत्नी दिन भर अकेली बेंटी कमरे की डेंटों की संख्या का अनुमान लगाती रहती। खाना बनाने के अतिरिक्त करने के लिए और था भी क्या? सामने के मम पर जोड़े से बदन और चिह्नों से। इन सबके बीच बेटे-बेटे धक जाती तो पढ़ने लगती, पढ़ते-पढ़ते धकान लगती तो निद्रा की गोद में चली जाती। इससे उन्धरो तो पति की प्रतीक्षा, इस समय बहो तो कर रही थी।

यही तो है सामान्य भारतीय नारी का जीवन, जिसकी वह प्रतीनिधि थी। 'नारी' इन दो अक्षरों और मात्राओं की चहार दीवारी ने जैसे एक बाड़ा बना रखा है, जिसमें अंधा मृत्यु समाज कैद है और कैदी का जीवन जिसकी प्रतिभा, क्षमता, योग्यता, प्रगति के बीच की विश्रस्ता है कि वह पुनः-सुई और गरी। क्योंकि विकास के लिए जो उन्मुक्त आकार, सुसुकने मिट्टी चाहिए वह उसकी नियति में कहा? नियति न ! न ! नियति नहीं। नियति बनने वाला कौन है? परमात्मा! उसे यहि देती अपेक्षा होता तो नारी को 'जीवन वीणा' के रूप में क्यों गढ़ता, जिसके हर तार में मार्मिक भावनाएं भरी ही। जिसकी हर झुंकी किसी के दिल में प्रेरणा का राग भरती है। तब यह नियति कदापि नहीं, यह है विषयित-जिसका निष्कारण... उह... क़रते हुए उसने बुझती लगी अंगीठी की आग को फिर भड़काया।

यह जाने कब आरंभ। एक बह गवा है। कुछ ही आदमी को अपने घरों की निद्रा तो कर्नी चलाई। उसे अपने पति पर आक्रोश नहीं बल्कि गौरव है, उनके क्रांतिवादी होने पर। क्रांतिवादी अर्थात् भविष्य के समुज्ज्वल क्षितिज पर नए समाज की रचना हो संकल्पित क्षितिज। यह यही थे, ठीक ऐसे ही। तभी तो दिन-दिन एक ही चला, रात्रि, रात्रि नहीं। उन्हें अपने संकल्प को दुबह हर उस

यह जाने कब आरंभ। एक बह गवा है। कुछ ही आदमी को अपने घरों की निद्रा तो कर्नी चलाई। उसे अपने पति पर आक्रोश नहीं बल्कि गौरव है, उनके क्रांतिवादी होने पर। क्रांतिवादी अर्थात् भविष्य के समुज्ज्वल क्षितिज पर नए समाज की रचना हो संकल्पित क्षितिज। यह यही थे, ठीक ऐसे ही। तभी तो दिन-दिन एक ही चला, रात्रि, रात्रि नहीं। उन्हें अपने संकल्प को दुबह हर उस

कहानी

कहानी

विना रुके, विना थके चलना था और वे चल रहे थे। उसे इसमें आसक्ति कहा थी उल्टे खुशी थी। अन्यथा राजाओं जैसे ऐश्वर्य को कोई साधुओं से जीवन को वह क्यों अंगीकार करता। पर ये शिल्पकार अपने कार्य में नारियों को बाधा क्यों समझते हैं? यदि नहीं तो कुमार सिद्धार्थ पत्नी को क्यों सोना छोड़ गए? क्या वह उन्हें महामत्त बुद्ध बनने से रोके लेती?

सोचते-सोचते उसने तवा अंगीठी पर रख दिया। अब वह रोटी बना ही होगी। आँटे की थाली को सामने की ओर खींचा और रोटी बेनने लगी। थोड़ी देर बाद उसने आंगन में पैरों की आइड सुनी। उसके मुख पर हल्की-नी मुस्कान झलकने लगी। क्षण भर वह आभा उसके चेहरे पर रहकर चली गई और वह फिर उसी तरह काम में लगा गई।

पति आए। उनके पीछे-पीछे तीन और उनके निद्रा भी थे। वे आसपस में बाँट करते चले आ रहे थे। वे अपने मित्रों के साथ सौधे कमरे में चले आए। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरे में पहुंचकर रुक कर खाना पढ़ने लगे। भगवान जाने क्या होगा इस देश का, अस्थिर नेतृत्व, स्वामी छद्म लोकसेवा का बना पढ़ने लोकरोषक, अविश्वासनीयता से उजजा अलगाव, असुरक्षा से आँकड़ों के पैदावार, यह भी कोई मृत्यु का जीवन है, कोट-पानों, कुनो-किल्नियों से भी बदतर। कौन कब मसल दे, जब एक मसल नहीं रहा तब एक पेट प्रजनन के कौचड़ में डूबे रहें।

मित्र के कथन को सुनकर वह बोल उठे मृत्यु ने अपने हथों अपनी दुर्गति की है, अब निर्माण के

लिपि भी उसे अपनी फोसदी बाँहें उठानी होंगी। रामराण की ठीक कहते हैं 'जुलम को मिटाने के लिए अन्यायियों को तो होमना ही होगा।' इसमें वे डरे जो बुजदिल हैं। माधुशुभि के लिए सर्वत्र न्योडावर करने वालों को डर क्या? तोसरे ने सम्पन्न किया।

पानी छिड़कते रहे और जिसकी जड़ में दीमक लगी है उस वृक्ष की सिंचाई 'सोचकर वह हंस पड़ी। हंस क्यों रही हो? बाती के बीच में इस तरह हंसना, शाप दे उर अक्का नहीं लगा।

'दीमक लगी जड़ वाले वृक्ष के पत्तों की सिंचाई की बात सोचकर हंस रही थी।'
दीमक, जड़, वृक्ष, सिंचाई करने वाली पहिलियान न बुझाओ सम्प-साफ करो।
'आप सुने तो !'
'कुछ कहो भी तो पहिलियान सुना रहे।'
'समाज की जड़ नारी है। नारी के विना क्या समाज की उत्पत्ति और प्रसार की कल्पना संभव है? और आज कही जड़ कुटिलियों-मुद्रताओं की दीमक से जर्वर प्राय है। ऐसे में जड़विहीन वृक्ष कौन समाज के विकास के लिए फिर जाने वाले प्रथम क्या समाज होगा?' सुनते-सुनते उन्हें कथन की मुद्रता और अपने भ्रम का भान होने लगा।
अब वह किञ्चित गंभीर होकर सुनने लगे 'नारी को जगृति नारी के विना संभव नहीं। पुष्य उसका बाड़ु मिया सकता है। अर्पाओं को तोड़ सकता है क्योंकि वे उसी की बनाव है, पर मानसिक श्रान्तियों, परिस्थितियों की विश्रस्ता उसके अपने मन की उपज है, जिसके निवारण के लिए नारी का कर्तव्य अपेक्षित है। इस अपेक्षा को पूरा किए विना न देश का उद्धार संभव है और न समाज की नवीन रचना।'
अब कहने के लिए बचा ही क्या था। सारी बातें साफ हो गई। रामराण बाबू की नींद काभूर हो गई थी। वह सोचने के लिए विवरा थे। 'दुधारी बात सी फोसदी सच है' वे बोल पड़े 'नारी को अपनी और समाज की 'नई नियति' बनाने के लिए खुद जूझना पड़ेगा', और पुष्य को? इसके पहले वाक्य पूरा कर कि वह बोल उठे 'उसमें सारथियों' दोनों की आँद एक-दूसरे से मिलीं, संकल्प की एक दीर्घ उपभक्त अक्षरों से फिसल गई।
अपने क्रांतिवादी पति की सहधर्मिता उसके साथ अपनी 'नई नियति' बनाने नवीन पथ पर चल पड़ी।

'सोचते-सोचते उसने तवा अंगीठी पर रख दिया। अब वह रोटी बना ही होगी। आँटे की थाली को सामने की ओर खींचा और रोटी बेनने लगी। थोड़ी देर बाद उसने आंगन में पैरों की आइड सुनी। उसके मुख पर हल्की-नी मुस्कान झलकने लगी। क्षण भर वह आभा उसके चेहरे पर रहकर चली गई और वह फिर उसी तरह काम में लगा गई।

पति आए। उनके पीछे-पीछे तीन और उनके निद्रा भी थे। वे आसपस में बाँट करते चले आ रहे थे। वे अपने मित्रों के साथ सौधे कमरे में चले आए। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरे में पहुंचकर रुक कर खाना पढ़ने लगे। भगवान जाने क्या होगा इस देश का, अस्थिर नेतृत्व, स्वामी छद्म लोकसेवा का बना पढ़ने लोकरोषक, अविश्वासनीयता से उजजा अलगाव, असुरक्षा से आँकड़ों के पैदावार, यह भी कोई मृत्यु का जीवन है, कोट-पानों, कुनो-किल्नियों से भी बदतर। कौन कब मसल दे, जब एक मसल नहीं रहा तब एक पेट प्रजनन के कौचड़ में डूबे रहें।
मित्र के कथन को सुनकर वह बोल उठे मृत्यु ने अपने हथों अपनी दुर्गति की है, अब निर्माण के

उमाेश कुमार साहू

लौन्डन की दोस्ती

लौन्डन की दोस्ती जी का जंजाल, आड़े तिरछे उल्टे पल्टे हसकते बवाल।

इधर उधर देव दास अजब गजब फराहा कपड़ा टुटहा जूता चाल डाला।

सुर सार फार फार बाइक मूत, सड़क गली चौक रहते हैं हलाल।

सर पे कंटी करं करं चरं चरं, आलू प्याज बर्तन कर्टिंग रहते बाल।

नदी नाले पुल पुलिए हवा पानी डबरे, लौन्डन से परेशान खंजड़ी नाल।

बिन मालिब हिलो हलो हॉण बाँट, गुडमातांग आपटरनंग इक्टिंग ताल।

लौन्डन की दोस्ती में जागी मत पड़ना, उल्टा पुल्टा जवाबसवाल हाल बे हाल।

- जोगेन्द्र महापात्र जोगी जगदलपूर

उजाड़

मानों धुन-प्रेक्ष की जाड़ सुन-शाम लागी सेवीदार
कोटों पर बैठ गए अजगर
जाने क्यों बनकर रह गए हम
कोटों की बाड़
हल परल बंदक की गोलियों से
नहीं कौटें खेल
साँसें हो आईं रस
गाँव-गाँव, शहर-शहर
लागते उजाड़
- शत्रुघ्न सिंह राजपूत

पर्यावरण के प्राण पंचतत्वों पर केन्द्रित उपायास-अधोष

रचनाकार-शान्ती तिवारी, जगदलपूर

3-जल
(2)

किताब विषय है, हमने यह नहीं देखा कि परिस्थितियों और हमारी मेधा का किताब समन्वय संभव है। हमने केवल और केवल अपनी मेधा का विकास किया, अहंकार किया। ऐसी कुचेष्टा का यह परिणाम तो होता ही था, होना ही था। मुन् आओ हम गंगा के शीतल जल में अडखलियाँ कर मार्ग को अपनी धकानदू कर।
हां वह गंगा ही थी सुरुर प्राण से यात्रा करके वे गंगा में केदरशन करने पहुंचे थे। लंबे मार्ग को यात्रा की धकान से सभी थकित था। गंगा के दरशन का सौभाग्य होते ही उसमें डुबकी लगाने का लाभ संवरण तो वे कर ही नहीं पाए,साथ ही मार्ग की थकान दूर करने का भी वे प्रयास कर रहे थे।
मुन् आ जाओ न...?
नहीं देवी, मैं के जल में कारखानों से निकला अपशिष्ट आकर समा गया है। पारो और कचरा, प्लास्टिक, मल मूत्र आह...मां की इस दूरस्थगी की कल्पना क्या हमारे पूर्वजों ने की होगी? क्या इसी कुलित के लिये उन्होंने अफक प्रयास किया था और... और यह दूरस्थन है अथवा सत्य, मुझे तो मां के जल में कोई दिख रहे है। क्या मां ने इसी दिन के लिये भरती पर अपना अवतरण किया था, धरती पर अपने पा धरे थे।
आओ... सहयात्रियों ने मित्रों ने उन्हें पाने में बलात खींच लिया था।
आश्चर्य।
जल के सर्वां मात्र से ही मुन् के राग में ताजगी आ गई। अंग और कूर्तित से भर उठा। वह मां गंगा के नाम की महिमा की अथवा गंगा जल की विश्वप्रदा अथवा आस्था की विषय थी अथवा सख्ता समवेत रश् अथवा कुछ और?
मुन् समुख नहीं पाये किन्तु जल से बाहर निकलते ही पुनः अन्वसाद पर उठा। इत्य उहं नाद बाव भिष्कारता रहा, हमने मां को किस अवस्था में पहुंचा दिया, किन्तु मां गंगा ही क्यों उनके अपने नहीं छोटी सी नदी भी तो इन दुर-विषय को प्राप्त कर अपने अस्तित्व की रक्षा का प्रयास कर संघर्ष कर रही थी। केवल उनके शाह की नहीं अस्तित्व पर विश्वास की निद्रा, अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष कर रही थी। अन्तर केवल इतना ही था कि वह किसी भूगम में कम था तो किसी भूगम में अधिक, किन्तु या पूरे विश्व में।
जिन जल देव की हम पूजा करते हैं, हर पवित्र कार्य का प्रांभ करते से ही करते है, प्रातः जल से ही सूर्य देवा को अर्घ्य का अर्पण करते है, जल से ही अपने दिवंगत पूर्वजों का तर्पण करते है, उन जल देवता को हम आदर क्यों नहीं दे रहे, हम उनका सम्मान क्यों नहीं कर पाते, उनका निरादर कर हम आज बाली संतियों का मार्ग क्यों डकतीं को कर रहे है.....?
मां... और फिर नदीओं आदिक किन्हो लिये संघर्ष कर रही है? किन्हे लिये अपने अस्तित्व को बचाये रखना चाहती है।
क़मासः

डरना जरूरी है

जिस तरह देश की रक्षा में, मरना जरूरी है, काम करो या न करो, काम का दिखावा करना जरूरी है, अपने अछे दिन लाने के लिए अपनी जेबें भरना जरूरी है, ईमानदार बनने के लिए, भ्रष्टाचार करना जरूरी है, ठीक वैसे ही देश के विकास के लिए जनता-मीडिया-संस्थानों का सरकार से डरना जरूरी है। हमारे देश की जनता वैसे भी डरने में नंबर एक है। अगर डरने का कोई ओलम्पिक होता तो क्या मजाल किसी और देश की जो उसमें गोल्ड, सिल्वर तो क्या कांस्य पदक तक जीत पाता। हमारे देशवासी ही तीनों पदक जीते।

हमारे देश में डरने का इतिहास भी है, भूगोल भी। डरने और डराने की राजनीति भी है, और अर्थशास्त्र भी। डरने और डराने का संव्यवहार मौर्य भारतवर्ष में पाया जाता है। कभी लोगों डराने के नाम पर डराकर औतों की हत्या करके देश की जनसंख्या कटौत करते हैं। कभी जनसंख्या का डर दिखाकर देश के रक्षुत्ता गाय के नाम पर मुसलमानी और दैलियों को मारकर मुसलमानी और दैलियों को कटौत करने लगते हैं। कभी दैलियों का डर दिखाकर, कोर्ट से कानून खारज कर दिया जाता है। कभी कोर्ट का डर दिखाकर सरकार कोर्ट पर शिकना लगाने वाली है तो कभी सरकार का डर दिखाकर कोर्ट मीडिया के सामने जन-अदालत लगाने लगती है।
हमारे देश में डरने के लिए नए-नए डर का, हर करार, हर डिजाइन के डर का भरपूर आंदोलन होती रहती है। कभी मुंहनेचवा के डर के मजे में दै-नार लोगों को मारकर मजाल ले लेती है। कभी बचपा चौर से डरकर आते-जाते लोगों को मारकर परम आंदन की प्रति जातते है। कभी मंत्रों से डरने का रसाव्यवदन करती है तो कभी बाल-कटवाने से डरने का सुख लेती है। इन सबसे बच यह तो सरकार को नसबंदी और नोडबन्ड से डर लेती है लेकिन हर हाल में हर साल में डरती जरूर है।
हर डर हूआ आदमी दूसरे को डराने के पुनीत काम में लगा हुआ है। डरी हुई जनता, सरकार को डराने से डरती है। चुनाव से डरी हुई सरकार, जनता को विषय के घोटालों से डरती है। उनके कारतमों के आतंक से डरती है। अगर कोई सरकार के कारतमों बातने लगे तो सरकार उसे साम-दण्ड-भेद से डाकड़ ही डल लेती है। राजनीतिक पार्टियों,

को मुसलमान से, और मुसलमान को हिन्दू से डरती है। अगर जनता नहीं डरती, तो दैवी क्रायकर डरती है, तो विपक्ष, जनता को लोकत्रर के खतरों का डर दिखाकर डरता है।
इमारें देश में डरने और डराने की राजनीति के साथ-साथ अर्थनीति भी होती है। सारे बड़े-बड़े ब्रांड, नकलालों से सभधान का बाँधे लाकर, जनता को नकलालों से डराने करते हैं। सेहत का डर दिखाकर खाने के सरसे, तेल, दूध-घी, चावल दाल आदि को मर्ती में बेचकर अरबों-खरबों के चारे-न्यारे कर लिए जाते हैं। किसनों की हलायों के कर्ज का डर दिखाकर, बड़े बड़े महजनों के लाखों के कर्ज का परिपूरण हो जाता है।
बड़े-बड़े अस्पताल, शौंग का डर दिखाकर, सभाएण कुकाम-बुखार में भी लासुओं नेब से लेते कर लेते हैं। कोलना का डर दिखाकर प्राइवेट अस्पताल लोगों का खून चूसकर रोगी भी मुश्किल कर दिया है। नर्सलियाँ का डर दिखाकर, निहथे गीव वालों पर गोलियों चलाकर, जंगल-जमीन काबिर्ती में भार से भार से खिस्का दिया जाता है।
डरने का ज्ञान हमें महाभारत और रामयाण में भी मिलता है। भयान शंक्रुकरण ने अर्जुन को इतना गीता का ज्ञान दिया लेकिन वो मानने को तैयार ही नहीं हुए। उसके बाद दृक्णा ने उन्हें विकरल रूप, भयानक रूद्र रूप दिखाए और अर्जुन डूट से मान गए। रामपतिर्त मारस में बाला तुलसी ने कहा था, 'भय हिन्दू होना न शीर्ण'। यानी बिना डर के प्रेम नहीं होता। इसीलिए अगर आप सरकार से प्रेम करते हैं तो सरकार से भयभीत भी होना चाहिए और आपका प्रेम अधूरू माना जाएगा। अगर आप अदालतों से प्रेम करते हैं तो अदालतों से डरना भी चाहिए। प्रेम में लोग प्रेमिकाओं



से तो हमेशा बात-बवाल मारने भी यांगते रहते हैं चाहे लाली प्रेमिका की ही हो लेकिन कुछ नसुपूद बीरता का आभुषण ओढ़कर। डरते भी नहीं। माग्नी तो डर की बात है। बाला तुलसीदास के अनुसार विना भय के प्रेम हो ही नहीं सकता।
आजकल हमारे देश के लोग आसपस में इतना प्रेम करने लगे हैं कि सब एक दूसरे से डर रहे हैं। डर का या प्रेम का तो यह आलम है, कि एक तरफ हिन्दू खरसे में है, के नारे लगाते मिल जाते हैं तो दूसरी तरफ इस्लाम खरसे में है, कहने वाले भी मिल ही जाते हैं।
हिन्दू-मुस्लिम को धरसे धरसे से डरना, दोनों के लिए बहुत लाभदायक और सदा सौंद है। अगर वे एक-दूसरे से डरना बंद कर देंगे तो इनको और भी ज्यादा भयानक खतरों का सामना करना पड़ेगा जो कि इन्के लिए ज्यादा बुरा होगा क्योंकि अगर हिन्दू-मुस्लिम का डर खत्म हो जाएगा तो फिर आसको देश की समस्याएं ज्यादा खराबीं। फिर आसको चालीस साल में सबसे ज्यादा दो चुकी बेरोजगारी से डरना पड़ेगा। नीकरियाँ आने की बजाए, जाने का डर सताएगा। बेहतरात बहूती स्वकीय फीस या महंगी तेली शिशा के कारण, अनेकली नसलों के अनपढ़ रह जाने का डर आसको बेचैन कर देगा। सबकुछ विकरल प्राइवेट हेलो सस्थानों में अपने बच्चों के और अपने वाली पीयाँतों के चंहुआ सखरु बनकर रह जाने का खौफ सताएगा। फिर अपनी बात करने पर देशदोही कहाने का डर आसको भारी पड़ेगा। सत्ता से सवाल पूछने या शोषित मजदूरों के साथ डरते होने पर अर्धन-नक्कली बनावक जेल में दूराने का डर सताएगा। तो इन सब खौफनाक, डराने नी चीजों से अगर बचना है तो हिन्दू-मुस्लिम से डरना ही ज्यादा

कथाञ्जलि
तुम आज़ाद हो

अब तो बाला का चुना जाना था।
पंचवत्तर अब हो गया,
नहीं खौफ भय है।
पैरुड में एक्टिव रहें,
और उसका असर भी दिखे।
भला ऐसा कौं होता है क्या
थैराप जब लगना है इत्रका
तब समझ आता है,
किसे जोर से पटकना है।
आजुआद कर दिया जाता है
मिली,भारत का जिस पर
आरोप लगाया जाता है।
सोचों, कौन होगा इस्परे सवार
क्योंकि डूब रही है लिप
मात मांनों प्रूटटाडम लौडारिण।
- संजय एम. तराणोरकर